International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 409-411

मलूकदास के काव्य में जीव–जगत की अभिव्यक्ति

डॉ० कविता चौधरी
अध्यक्ष (हिंदी विभाग), गुरू काशी विश्वविद्यालय, तलवण्डी साबो बठिण्डा, पंजाब, भारत।

प्रस्तावना

सकल जगत के पदार्थों, भूतमात्र में वह आत्मतत्व स्वयं ही अभिव्यक्त हो रहा है। वह भूतमात्र में है और भूतमात्र उसमें व्याप्त है, सब ओत प्रोत है। सर्वत्र, सब क्रियाओं के संचालन, कृर्तृत्व, स्वयं क्रिया, क्रीड़ा, क्रीड़ास्थल और क्रीड़ा कर्ता सब कुछ वही है। इस आध्यात्मिक सत्य की सिद्धि के उपरान्त जितने भी भूतमात्र हैं, उनके साथ साम्यदृष्टियुक्त, सद्व्यवहार करना मनुष्य का सत्कर्तव्य है। अपने स्वार्थ, अंधविश्वास, जिह्वा स्वाद, अज्ञान तथा अन्य दूषणों के आधार पर किसी को दुःख देना अथवा किसी का अहित करना या जीवहिंसा करना अधर्म है, अन्याय है, पाप है। इसके लिए अत्याचारी को एक दिन अपने इस कुकृत्य का कुफल तो भोगना ही पड़ेगा। मलूक को ऐसे कृत्यों के प्रति आश्चर्य होता है जो जीवहिंसा तक को भी धर्म कहते हैं। यदि हिंसा ही धर्म है तो फिर अधर्म क्या रह गया और फिर हिंसक और अहिंसक का अन्तर ही कहाँ रहा? मलूक ने सभी भूतमात्र के साथ प्रेम, दया, करुणा सद्भावना तथा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करने को ही उत्तम कहा है।

मलूक के मन नाँही अहंकारा। जहाँ तहाँ करतर पवारा।।
बेगि बँधायो नारा सोई। तहँ बसि लोग सुखी सब होई।।[1]

आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक दोनों हीं रूपों में एक विशाल समाज की स्थिति बनती है। आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ज्ञानी फरुष के लिए यह सम्पूर्ण विशाल समाज एकत्वपूर्ण होता है और यह सभी प्राणियों के साथ आत्मीय एकता का अनुभव करता है। ऐसे साधक पुरुष को वृक्ष की पत्ती, टहनी और पुष्पों के तोड़ने में भी कष्ट अनुभव होने लगता है। महात्मा मलूकदास ज्ञानी भक्त थे। उनके मतानुसार चरम सत्य सभी पदार्थों में व्याप्त है। वह वृक्ष शाखाओं तथा उनकी पत्तियों में भी विद्यमान है। पत्तियाँ चेतनयुक्त हैं। मलूक के अनुसार उनको भी कष्ट देना अनुचित है और फिर जिसके अर्चनार्थ पत्तियों का प्रयोग किया जा रहा है वह देव स्वयं उस पत्ती में व्याप्त हैं तो यह एक हास्यास्पद कार्य ही है। सर्वत्र व्याप्त आत्मतत्व के सत्य रूप में अन्य पदार्थ कुछ है ही नहीं, फिर बाह्योपचार के द्वारा इस पूजा पाठ का तो कोई सार ही नहीं।

कहत मलूक सुनो रे भोंदू, अबिगत मूल बिसारा।।[2]

यह विश्व हिंसावृत्ति को प्रोत्साहित करने वाला नहीं है वरन यह तो प्रेम का घर है। यह स्वयं कष्ट उठाकर और दूसरे को सुख पहुँचा कर ही प्राप्त हो सकता है। उनके विचारानुसार जो साधक सम्पूर्ण जीव मात्र के साथ आत्मीय एकता का अनुभव कर पाता है वह सर्वानन्दमय होकर सदैव मुक्तानन्द अवस्था का आनन्द लेता है। उस अवस्था का रहस्य कहा नहीं जा सकता वह तो अत्यन्त मधुर होता है।

दरस भये पट खोलो सहज भयो प्रकाश।
घट–घट परचै प्रगटो गावै सुधरादास।।[3]

मलूक ने विशाल समाज के साथ तादात्म्य स्थापित करने को उत्तम कर्तव्य बताया है। यह विश्व प्रेममय है। यह आनन्द लीला धाम है। यहाँ निरानन्द उत्पन्न करना यहाँ अव्यवस्था उत्पन्न करना है। सम्पूर्ण विशाल समाज को आध्यात्मिक एकत्व पूर्ण रूप में स्थित रहना है।

मारग सत लाख का रहा। तब करतै विचार एक गहा।।
हंस रूप अंस एक जावै। सो जीवन उद्वार करावै।।
एक फरुष कों अग्या दीन्हा। तब तिन जगहि पयाना कीन्हा।।[4]

छांदोग्य उपनिषद् में ब्रह्म को आनन्द रूप कहा गया है। अखण्ड ब्रह्मांड में आनन्द है, ब्रह्म आनन्द रूप ही हैं, अतएव उसी की सेवा रूप जिज्ञासा करनी चाहिएः

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति।।[5]

बृहदारण्यकोपनिषद का कथन है कि समस्त भूतमात्र में जो आत्मतत्व व्याप्त है हम उसी की प्रतीति के लिए ही तो अन्य पदार्थों के प्रति आकृष्ट होते हैं और वे हमें प्रिय लगते हैंः

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।[6]

प्रेमदर्शन का कथन है कि आत्मरूप से प्रत्येक प्राणी में आत्मतत्व अर्थात भगवान विद्यमान है, अतः सर्वात्मा के प्रति प्रेम करना वस्तुतः भगवान की भक्ति ही है। ऐसी प्रेमरूप भक्ति करने वाले को मुक्ति निश्चय ही मिलती हैः

मोक्ष कारण सामग्रव्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्व स्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यीाीधीयते।।[7]

प्रेम का पूर्ण प्रकाश करने हेतु ही सृष्टि रचना का उद्देश्य है। अतएव समस्त प्राणीमात्र, भूतमात्र, जड़ चेतन, स्त्री फरुष, बाल वृद्ध, पशु पक्षी, ज्ञानी अज्ञानी, सब कोई प्रेममय हैं। सबका जीवनादर्श आत्म दर्शन है। आत्मीय एकता को, समस्त विश्व के साथ प्रेम पूर्वक सद्व्यवहार करके ही प्राप्त किया जा सकता हैः

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।[8]

भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि जो सभी भूतमात्र की आत्मा में अपनी आत्मा को तथा अपने में सबकीं आत्मा को एकत्वपूर्ण रूप में देखता है और सम्पूर्ण आत्मा को र्स्वव्यापी अनन्त चेतन आत्मा में देखता है वह समदर्शी साधक सर्वोच्च होता है। गीता के समान ही मलूक ने भी अनुभव किया और अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए कहा कि हम सब में वही है दूसरा कोई नहीं।

नाम होत त्रिस रैन को त्रिगुण दुनुक अमेल।
रूई रोम रज कन तें खीनो हरि गुण अविगति खेल।।[9]

सारांशतः मलूक जी ने आध्यात्मिक एकता की सिद्धि के लिए समस्त विश्व से प्रेम के साथ सद्व्यवहार करने की बात कही है। संसार के सभी जीव जंतु प्राणी मात्र, मनुष्य और पशु पक्षी सभी में आत्मतत्व व्याप्त है और इसीलिए सब का सामूहिक स्वरूप एक विशाल समाज है। इस विशाल समाज को भेद भाव रहित एवं समत्वपूर्ण तथा समरसापूर्ण होना चाहिए। केवल मानव समाज ही की पूर्ण स्थिति न हो वरन अन्य प्राणी मात्र एवं जड़ समूह को भी उसके साथ सम्मिलित करके सम्पूर्ण विशाल समाज की पूर्ण आध्यात्मिक एकता अथवा आत्मीय एकता पूर्ण स्थिति होनी चाहिए। महात्मा मलूकदास निष्काम कर्म योगी के रूप में जीवन पर्यन्त समाजोपयोगी एवं लोक कल्याण की दिशा में कार्यरत रहे। विचारसरणी में उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में जो सिद्धान्त निर्धारित किए साधना क्षेत्र में उनकी अनुभूति प्राप्त की। उस अनुभूति के आधार पर उन्होंने समाज कल्याण की दिशा में समाज के स्वरूप एवं संगठन सम्बन्धी विचारों को प्रतिपादित किया।

मानव समाज की इकाई व्यक्ति स्त्री और फरुष के आचरण एवं कृत्यों के अनुसार ही समस्त समाज का स्वरूप स्थित होता है। समाज में यदि अधिकाँश लोग चरित्रवान, संयमी, धार्मिक तथा सौहार्द्र पूर्ण होंगे वह समाज उतना ही श्रेष्ठ, भद्र होगा। इसके विपरीत जिस मानव समाज में कुत्सित एवं दोषपूर्ण व्यक्तियों की संख्या आधिक होगी वह समाज भी उसी अनुपात में कुत्सित श्रेणी का होगा। महात्मा मलूक ने सुशिष्ट एवं संयत समाज के संगठन के लिए व्यक्ति को सर्वोच्च चरित्रवान, संयमी, आदर्श, महात्मा, वैष्णव जन के रूप में प्रतिपादित किया।

समाज की दूसरी इकाई स्त्री को भी पतिव्रत धर्म, पूर्ण चरित्रवान, गृहलक्ष्मी एवं सती के आदर्श पर चलने वाली प्रतिपादित किया है। इन महात्माओं के विचारों की नारी त्यागमूर्ति, सहिष्णु, सात्विक प्रेमपूर्ण, सर्वगुण सम्पन्ना, गृहस्थ जीवन में प्रवीण तथा सभी मानवोचित कर्तव्यों एवं अधिकारों को सुसम्पादित करने वाली होनी चाहिए। ऐसे गुण सम्पन्न परुषों तथा सर्वगुण विभूषित स्त्रियों के घर में सन्तान भी सुसंस्कारवान होनी चाहिए। चरित्रवान एवं संयमी जीवन वाली संतान ही तो भावी समाज की निर्मात्री होती है इसीलिए माता पिता और गुरू को संतान की शिक्षा दीक्षा के प्रति सजग रहने की आवश्यकता होती है।

सन्त मलूक की एक साखी हैः–

हरी डार मत तोड़िए, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहें, अपना–सा जिव जान।।[10]

विद्यार्थी जीवन प्रस्फुटन का समय होता है। इस जीवन में शिक्षक एवं शिक्षार्थी का पवित्रतम सम्बन्ध उच्चादर्शों को पूरा करने वाला होना चाहिए। विद्यार्थी विद्योपार्जन के साथ साथ चरित्रगठन के द्वारा अपने को विकासोन्मुख रखें यही उनका सत्कर्तव्य है। इस प्रकार समाज में स्त्री–पुरुष द्वारा पूर्णता की प्राप्ति होनी श्रेयस्कर है। सभी को समान रूप से उन्नति करने का पूर्ण अधिकार है। लिंग विभेदहीन समाज की रचना का दोनों महात्माओं का प्रयास था। धनी और निर्धन का भेद भाव भी समाज में अनेकत्व का सृजन करके अव्यवस्था उत्पन्न करता है। अतएव धन का संचयन नहीं होना चाहिए। जिसको जितनी आवश्यकता हो वह उपभोग करे और शेष को दूसरों के सहायतार्थ अर्पण कर दे। धनी निर्धन को आदर दे और सब परस्पर भाई भाई की भाँति मिल जुल कर वर्ग विभेद हीन समाज की रचना में दत्तचित्त हों।

भारतीय वैदिक चिन्तन की यह आधारभूत स्थापना–यथा ब्रह्मांडे तथा पिण्ड एवं यथा पिण्डे तथा ब्रह्मांडे हमारे सन्तों की सोच का भी आधार रही है। सन्त मलूक की वाणी में इसे देखा जा सकता हैः

मुरदिस मेरा दिल दरियाई, दिलगहि अंदर खोजा।
जा अंदर में सत्तर काबा, मक्का तीसो रोजा।।[11]

साम्प्रदायिक विचारों के आधार पर भी समाज में विभेद बुद्धि का प्रसार हो जाया करता है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, यहूदी, अस्पृश्य आदि अनेक जातियों के पारस्परिक व्यवहार में भिन्नता रहती है और उसी के कारण वैमनस्य, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या आदि दूषणों का प्रचार हो जाता है और आपसी अविश्वासों को लकर झगड़े टन्टे, साम्प्रदायिक झगड़े हो जाया करते हैं। विचारों में भिन्नता के कारण आध्यात्मिक चरम सत्य को भूल जाना उचित नहीं। आत्मतत्व सभी में व्याप्त है। वह हिन्दू में भी है और मुसलमान में भी और अन्य धर्मवालों में भी। मूल तत्व के आधार पर सब एकत्वपूर्ण हैं और इसलिए सब परस्पर भाई भाई हैं और सबको एक दूसरे के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। धर्म के नाम पर व्यर्थ पृथकक्रण का कार्य अशोभनीय है। इस प्रकार सम्प्रदाय विहीन समाज की रचना में सबको संलग्न रह कर समाज को सद्समाज बनाना चाहिए।

मौलिक रूप में धर्म एकत्वपूर्ण है। वह सबको धारण करने वाला है परन्तु बाह्याडम्बर के कार्य धर्म को लेकर भी पारस्परिक वैमनस्य का प्रसार होता है। सत्य धर्म है सबको संगठित करने वाला और सब के कल्याण के लिए कार्य करने वाला। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रियनिग्रह आदि द्वारा संयमित जीवन की साधना करना ही सत्य धर्म का पालन करना है। इस सहज धर्म के पालन करने वाले कभी परसपर कलह नहीं कर सकते। इस प्रकार धर्म निरपेक्ष समाज के संगठन की दिशा में प्रयत्नशील रहना सब का कर्तव्य है। समाज में अस्पृश्य विचारों के कारण भेद विभेद हो जाता है। एक मनुष्य दूसरे को हेय, निम्न, अन्त्यज, अस्पृश्य आदि के नाम देकर उसके साथ अमानुषिक व्यवहार करने लगता है। उफँचे और नीचे लोगों की पंक्तियाँ बन जाती हैं जो समाज को परधीनता की ओर उन्मुख कर देती हैं।

सभी कोई एक ही मिट्टी, जल और पवन के द्वारा निर्मित है। आध्यात्मिक चेतन युक्त हैं। सबमें एकही आत्मा व्याप्त है और इसलिए सब एक हैं, भाई भाई हैं। भेद भाव व्यवहृत करना निन्दनीय है। सबको परस्पर मिल जुल कर रहना चाहिए और वर्ण विभेद हीन समाज की रचना करनी चाहिए। समाज में रुचि विभिन्नता के कारण अनेक दुर्व्यसनों का प्रचलन हो जाता है अनेक ऐसी प्रथाएँ उत्पन्न हो जाती है जो समाज को अवनति की ओर ले जाती है। उन सभी कुप्रथाओं का परिहार करना समाज सेवकों का परम कर्तव्य है और समाज को साँसारिक एवं नैतिक रूप में परिशुद्ध करना सबका सत्कर्तव्य है। एक शुद्ध समाज की स्थापना करना श्रेयस्कर है।

सकल विश्व के नाम सब कहे मलूका दास।
भक्त प्रनाली वरनौ पूरन प्रेम प्रगास।।[12]

जितने भी प्रकार के भेद विभेद हैं सब का लोप हो जायगा और उस समाज का व्यक्ति नित्य, मुक्त, शुद्ध बुद्ध स्वरूप में स्थित एकत्वपूर्ण समाज का सुख भोगेगा। मलूक दास के शब्दों में:–

यौं विचारि जीव सों कहो मैं लिय अब यह नेम।
तजि हों कामादिक विषै तजौ न हरि पद प्रेम।।[13]

निष्कर्षः

मानव समाज के अतिरिक्त अनय प्राणियों का भी समाज है। उस समाज से भी मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। मनुष्य समाज तथा अन्य प्राणि वर्ग का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पशु पक्षी, कीट पतंग भी मनुष्य के प्रयोग में आते हैं तथा उसके कृषि आदि कार्यों में महान सहायक होते हैं। इस प्रकार मानव समाज और अन्य प्राणी समाज मिलकर एक विशाल समाज की रचना करते हैं। यह विशाल समाज पारस्परिक एकता से बँधा हुआ है। हम तथा अन्य भूतमात्र एकत्वपूर्ण है। महात्मा मलूकदास ने इस प्रकार विश्वबन्धुत्व के आदर्श पर, आत्मवत् सर्वभूतेषु के अनुरूप समाज रचना की दिशा में अपने विचार व्यक्त किए हैं। वे एक ऐसे आध्यात्मिक एकतापूर्ण समाज का चित्र बना गए हैं जो सदैव व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता रहेगा। इस समाज में भेद भाव का नाम न रहेगा।

संदर्भ

1. वही, पृ. 321
2. डॉ. बलदेव वंशी ;संपा.0, संत मलूक ग्रंथावली, पृ. 54
3. डॉ. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृ. 319
4. वही, पृ. 315
5. छांदोग्य, 7/23
6. बृहदारण्यकोपनिषद, 2.4/4.5
7. प्रेमदर्शन, पृ. 41
8. गीता, 6/29
9. डॉ. बलदेव वंशी ;संपा.0, संत मलूक ग्रंथावली, पृ. 289
10. डॉ. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृ. 48
11. वही, पृ. 49
12. डॉ. बलदेव वंशी ;संपा.
13. संत मलूक ग्रंथावली, पृ. 287
14. वही, पृ. 112